संस्कृत साहित्य सौरभ

मुद्राराक्षस

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

६

विशाखदत्त-कृत

मुद्राराक्षस

●

श्री हरदयालुसिंह
द्वारा
कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

●

१९५७

सस्ता साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

भूमिका

'मुद्राराक्षस' के लेखक महाकवि विशाखदत्त सामंत बटेश्वरदत्त के पौत्र और भास्करदत्त के पुत्र थे। इन्हीं भास्करदत्त की उपाधि महाराज पृथु थी। ये लोग कौन थे और कब हुए, इस बारे में किसीको कुछ पता नहीं। विद्वान लोगों ने तरह-तरह के अनुमान लगाये हैं। कुछ लोग इन्हें गौड़ देश का निवासी मानते हैं। कुछ की राय में ये चौहान-वंशी हैं।

इसी तरह उनका समय भी ५वीं शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक ठहराया गया है। लेकिन इस बारे में एक बात निश्चित रूप से पता लगी है और वह यह कि ये १०वीं शताब्दी से पूर्व हुए हैं। 'दशरूपक' नामक पुस्तक में 'मुद्राराक्षस' के कुछ उद्धरण मिलते हैं और 'दशरूपक' १०वीं शताब्दी की रचना है। इस प्रकार इस नाटक का रचना-काल ५वीं और १०वीं शताब्दी के बीच में निश्चित होता है।

'मुद्राराक्षस' की कथा विशुद्ध ऐतिहासिक है। उसमें राजनीति जैसे शुष्क विषय को इस प्रकार रोचक रूप में सामने रखा गया है कि कवि की लेखनी का चमत्कार मानना पड़ता है। फिर इस नाटक की एक और विशेषता है। वह यह कि उसमें केवल एक स्त्री पात्र है, वह भी थोड़ी देर के लिए। राजनीति और फिर नारी का न होना—इन दो तत्वों के रहते जो ऐसा सुंदर नाटक लिख दे, उस कवि की प्रतिभा के बारे में क्या कहा जाय! उसने बस एक ही नाटक लिखा है। नाटक में वीर-रस प्रधान है, अद्भुत और करुण गौण हैं। श्रृंगार भी प्रायः नहीं है। इसमें स्वराज्य की प्राप्ति और उसकी रक्षा के जो उपाय बताये गए हैं, उनसे मतभेद हो सकता है; पर वे चाणक्य-नीति के अचूक शस्त्र हैं।

—संपादक

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

तीसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का तीसरा संस्करण तक प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

मुद्राराक्षस

पूर्व-कथा

प्राचीन काल में मगध नाम का एक प्रसिद्ध देश था। पहले वहां पुरु-वंशी राजा राज्य करते थे। जरासंध आदि इसी वंश के प्रतापी राजा थे। इनका नाम चारों ओर फैला हुआ था। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र या पुष्पपुर थी। उसीको अब पटना कहते हैं। इस राजवंश का अंत होने पर नंदवंश के राजा यहां राज करने लगे। उनका प्रताप भी खूब फैला। इस वंश में महानंद नाम का एक बड़ा प्रतिभाशाली राजा हुआ। उसके दो मंत्री थे। उनमें बड़ा शकटार था। वह जाति का शूद्र था, परंतु वैसे बड़ा नीति-निपुण था। दूसरे मंत्री का नाम राक्षस था। वह ब्राह्मण था और उसमें हिमालय की-सी वीरता और सागर की-सी गंभीरता थी। प्रधान मंत्री शकटार अपने पद और प्रतिष्ठा के कारण कुछ अक्खड़ था। कभी-कभी महाराजा नंद के साथ भी उसकी खटक जाया करती थी। एक बार महाराज उसके दुष्ट स्वभाव से यहांतक चिढ़ गए कि

उन्होंने उसे परिवारसहित कारावास में डाल दिया। उनके भोजन के लिए केवल दो सेर सत्तू दिये जाते थे।

संयोग की बात कि एक दिन महाराज हंसते हुए अंतःपुर जा रहे थे। उन्हें हंसता देखकर विचक्षणा नाम की एक दासी भी हंसने लगी। वह उनकी मुंहलगी दासी थी, परंतु आज न जाने क्यों उसे हंसते देखकर महाराज चिढ़ गए। कड़ककर उन्होंने पूछा, "बता, तू क्यों हंसी ?"

दासी इस प्रश्न का क्या उत्तर देती! उसने कहा, "महाराज, आपको हंसते देखकर मुझे भी हंसी आ गई।"

इसपर महाराज का क्रोध और भी बढ़ गया। बोले, "यदि तू अपने हंसने का ठीक-ठीक कारण न बतायगी तो तुझे प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।" विचक्षणा डर गई; लेकिन वह निपट मूर्ख नहीं थी। उसने निवेदन किया, "महाराज, मुझे एक महीने का समय दीजिये।"

महाराज ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

इधर शकटार कारावास में पड़ा हुआ था। एक-एक करके उसके सारे परिवारवाले मरते जा रहे थे। अपने अपमान और कुटुंबवालों की अकाल मृत्यु से

शकटार के अंदर महाराज से बदला लेने की भावना तेज होती जा रही थी। ऐसे समय में अचानक एक दिन कई प्रकार के भोजन लेकर विचक्षणा ने शकटार की काल-कोठरी में प्रवेश किया और रो-रोकर उसने उसे सारी आपबीती कह सुनाई। शकटार तो ऐसे अवसर की ताक में ही था। उसने जानकारी के लिए दासी से कुछ प्रश्न पूछे। कुछ देर सोचने के बाद वह महाराज के हंसने का रहस्य भांप गया और उसने वह रहस्य विचक्षणा को बता दिया। विचक्षणा कृतज्ञ-भाव से बोली, "यदि आपकी बताई हुई युक्ति से मेरी रक्षा हो गई, तो मैं हमेशा आपकी दासी बनी रहूंगी।"

जब एक महीना पूरा हो गया तो महाराज को विचक्षणा की याद आई। उन्होंने उसे बुलाकर अपने प्रश्न का उत्तर पूछा और जब दासी ने शकटार का बताया हुआ रहस्य कहा तो वह चकित हो उठे। बोले, "विचक्षणा, सच बता यह रहस्य तुझको किसने बताया है? तेरे बस की तो यह बात है नहीं।" दासी ने शकटार से मिलने की अपनी बात महाराज को कह सुनाई। शकटार की बुद्धि का वैभव देखकर महाराज की आंखें खुली-की-खुली रह गईं। उन्होंने तुरंत उसे कारागार से मुक्त कर दिया। साथ ही राक्षस के साथ फिर से

उसे अपना मंत्री बना लिया। लेकिन अब वह प्रधान मंत्री नहीं था। इसके अतिरिक्त परिवार के नाश और अपने पुराने अपमान के कारण उसके मन से बदला लेने की भावना नहीं मिटी।

एक दिन वह वायु-सेवन के लिए बाहर निकला। घूमते-घूमते एक निर्जन स्थान की ओर चला गया। वहां उसने देखा कि काले रंग का एक ब्राह्मण पसीने से लथपथ, रास्ते में लगे हुए कुशों को जड़ से उखाड़ रहा है और उनमें मठा डाल रहा है। शकटार को यह देखकर बड़ा अचरज हुआ और उसने पास जाकर ब्राह्मण से उसका कारण पूछा। ब्राह्मण क्रोध में भरा हुआ था। लाल-लाल आंखों से उसकी ओर देखते हुए उसने बताया, "मैं अपने गुरु के पास से विद्या पढ़कर लौट रहा था। मैं विवाह करना चाहता था; लेकिन मार्ग में इन कुशों की नोकों ने मेरे पैरों को घायल कर दिया। इसलिए अब जबतक मैं इनको नष्ट नहीं कर लूंगा तबतक मुझे चैन नहीं मिलेगा।" ब्राह्मण की यह बात सुनकर शकटार के मन में जो अंधेरा छाया हुआ था, वह सहसा दूर होने लगा। बदले की भावना को जैसे रास्ता दिखाई दे गया। वह सम्मानपूर्वक उस ब्राह्मण को अपने घर ले आया और उसके लिए उचित व्यवस्था

करके अवसर की राह देखने लगा।

एक दिन महाराज नंद के यहां पितृ-श्राद्ध था। बहुत-से ब्राह्मण आमंत्रित थे। शकटार इस ब्राह्मण को लेकर वहां पहुंचा और उसे एक ऊंचे आसन पर बैठाकर स्वयं वहां से चला गया। थोड़ी देर में महाराज वहां आये और उन्होंने देखा कि आमंत्रित ब्राह्मणों के बीच में एक अनिमंत्रित काला ब्राह्मण ऊंचे आसन पर बैठा है। वह बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे अपमानित करके बाहर निकलवा दिया। ब्राह्मण का इसमें कोई दोष न था। वह इस अपमान से आगबबूला हो उठा। लाल-लाल आंखें निकालकर उसने उसी क्षण अपनी शिखा खोली और नंद-वंश के नाश करने की प्रतिज्ञा की। शकटार यही तो चाहता था।

महाराज महानंद के दो रानियां थीं। बड़ी शूद्रा थी। उसका नाम मुरा था। मुरा का पुत्र चंद्रगुप्त बहुत प्रतिभाशाली था। दूसरी रानी के आठ पुत्र थे और सब-के-सब निकम्मे थे। वे सब चंद्रगुप्त से जलते थे, क्योंकि वह बड़ा होने के कारण राज्य का अधिकारी था। इसी कारण राज्य का वातावरण बड़ा विषाक्त हो गया था। शकटार नें अवसर पाकर चंद्रगुप्त को अपनी ओर मिला लिया। इसके बाद उस ब्राह्मण ने

विष मिले हुए लड्डू तैयार करवाये और विचक्षणा के द्वारा आठों नंदों को खिलाकर उन्हें मार डाला। इस प्रकार शकटार की प्रतिशोध की भावना शांत हो गई। लेकिन जब सब-कुछ हो चुका, तब उसे अपने इस कर्म पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह सब-कुछ छोड़कर वन में चला गया और निराहार रहकर उसने अपने प्राण दे दिये।

अब वह काला ब्राह्मण सब-कुछ था। वह बड़ा कूटनीतिज्ञ और राजनीति का निष्णात पंडित था। उसके पिता का नाम चणक था। इसलिए वह चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे उसका वास्तविक नाम था विष्णुगुप्त। कूटनीति का विशेषज्ञ होने के कारण वह कौटिल्य भी कहलाया। महानंद और उसके पुत्रों की हत्या के बाद चंद्रगुप्त को उसने राजा बनाना चाहा; लेकिन अभी उसके रास्ते में अनेक बड़ी-बड़ी बाधाएं थीं। राक्षस अब भी महामंत्री था। नंदों की मृत्यु के बाद उसने महानंद के भाई सर्वार्थसिद्धि को मगध के सिंहासन पर बैठाया और स्वयं राज-काज चलाने लगा। चाणक्य इस स्थिति को कैसे सह सकता था! वह चंद्रगुप्त को मगध का एकमात्र राजा बनाना चाहता था। इसलिए वह विदेश गया और अफगा-निस्तान या उसके उत्तर प्रदेश के लोभी राजा पर्वतक

को अपनी ओर मिलाकर उससे पाटलिपुत्र पर आक्रमण करा दिया। घोर युद्ध के बाद राक्षस की सेना उखड़ गई। इसी समय चाणक्य ने षड्यंत्र रचाकर सर्वार्थ-सिद्धि को वैराग्य लेने पर विवश कर दिया। युद्ध में पराजय और राजा के वैरागी होने से राक्षस का सारा उत्साह भंग हो गया। वह अपने परिवार को चंदन-दास जौहरी के पास छोड़कर राजा को लौटाने के लिए वन की ओर चला। लेकिन चाणक्य ने तो उसे पहले ही मरवा डाला था! राक्षस को बहुत दुख हुआ। वह वहीं रहने लगा।

इस प्रकार चंद्रगुप्त के मार्ग का कांटा निकल जाने के कारण सारा शासन उसके हाथ में आ गया। लेकिन अब प्रश्न यह था कि महामंत्री कौन हो? चाणक्य राक्षस को महामंत्री बनाना चाहता था, क्योंकि वह नंद-वंश का पुराना भक्त था। सो उसने राक्षस के पास संदेशा भेजा, पर स्वामिभक्त सेवक ने उसे स्वीकार नहीं किया। यही नहीं, उसने पर्वतक को अपनी ओर मोड़ लिया। चाणक्य सब भेद लेता रहा। उसने चंद्रगुप्त की रक्षा और पर्वतक से बदला लेने का पूरा प्रबंध कर लिया था। इधर राक्षस ने पांच और राजाओं को अपनी ओर मिलाकर चंद्रगुप्त को

मारने के लिए एक विषकन्या भेजी। लेकिन सब-कुछ जाननेवाले कौटिल्य ने उस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया। पर्वतक उसी रात मर गया और उसका बेटा मलयकेतु डरकर कई अधिकारियों के साथ भाग गया। यह सब चाणक्य के षड्यंत्र के कारण हुआ। बाद में चाणक्य और राक्षस में नीति की जो चोटें चलीं, उन्हींका इस नाटक में वर्णन किया गया है।

: १ :

एक दिन चाणक्य पर्णशाला में बैठा हुआ मन-ही-मन विचार कर रहा था कि चंद्रगुप्त का राज्य तभी निष्कंटक हो सकता है कि जब राक्षस पकड़ा जाय। उसी समय उसके गुप्तचर ने उसे आकर सूचना दी कि पटना में और सब लोग तो चंद्रगुप्त के समर्थक हैं, लेकिन तीन व्यक्ति उसके विरुद्ध हैं। उनमें एक क्षपणक जीवसिद्धि है। यह नाम सुनकर चाणक्य बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योंकि जीवसिद्ध उसीका गुप्तचर था। प्रकट में उसने पूछा, "दूसरे कौन हैं?" दूत ने कहा, "दूसरा कायस्थ शकटदास है और तीसरा है चंदनदास जौहरी, जिसके यहां राक्षस अपना कुटुंब छोड़ गया है।" गुप्तचर ने अपनी बात के प्रमाण में राक्षस के नामवाली मुद्रिका भी दिखाई। मुद्रिका पाकर चाणक्य बड़ा प्रसन्न हुआ,

क्योंकि राक्षस को पराजित करने का यह एक बहुत बड़ा साधन थी। इसी बीच एक दासी चंद्रगुप्त के पास से आई और कहने लगी कि महाराज राजा पर्वतेश्वर का श्राद्ध करना चाहते हैं और आपकी आज्ञा से उनके आभूषणों को ब्राह्मणों को दान देना चाहते हैं। चाणक्य ने महाराज के इस विचार की बड़ी प्रशंसा की और अपने तीन विश्वासपात्र आदमियों के द्वारा वे आभूषण अपने ही पास मंगवा लिये। फिर उसने शकटदास के पास अपना आदमी भेजकर एक जाली-पत्र लिखवाया और उसपर राक्षस की मोहर लगा दी। उस पत्र को उसने अपने आदमी सिद्धार्थक द्वारा बधिकों के पास भेज दिया और कहा, "जब बधिक लोग तुम्हारा संकेत पाकर इधर-उधर हट जायं तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस के पास चले जाना। वह तुम्हें अपना उपकारी समझकर अपने पास रख लेगा। तब तुम उसका भेद लेकर मेरा काम करना।"

इसके बाद चाणक्य ने कालपाशिक और दंड-पाशिक को कहला भेजा कि क्षपणक जीवसिद्धि को अपमानित करके उसको नगर से निकाल दो, क्योंकि उसने राक्षस के साथ षड्यंत्र रचकर विषकन्या द्वारा पर्वतक को मार डाला है। इसी अपराध में अर्थात

राक्षस के मिले रहने से कारण उसने शकटदास को भी सूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी। उसके बाद उसने चंदनदास जौहरी को बुला भेजा और मीठी-मीठी बातें करने के बाद उससे कहा, "तुमने राक्षस के परिवार को अपने घर में छिपा रखा है। यह राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र है।" चंदनदास ने उत्तर दिया, "किसी समय राक्षस का परिवार मेरे घर में रहता था, लेकिन अब वह यहां नहीं है।"

चाणक्य ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और उसने चंदनदास से स्पष्ट शब्दों में कहा कि राक्षस के परिवार को महाराज को सौंप दो। इसी समय जीवसिद्धि को अपमानित करने और शकटदास कायस्थ को सूली का दंड देने का समाचार मिला। इसपर चाणक्य ने चंदनदास जौहरी से कहा, "देखते हो, राज-विद्रोहियों को कैसा-कैसा दंड दिया जाता है? अब भी समय है। राक्षस का परिवार राजा के हवाले कर दो।" लेकिन चंदनदास जौहरी ने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया, "आप मुझे धमकाते क्यों हैं? इस समय राक्षस का कुटुंब मेरे घर में नहीं है। अगर वह होता भी तो भी मैं उसे न देता।"

यह सुनकर चाणक्य ने मन-ही-मन चंदनदास

चौहरी की प्रशंसा की। लेकिन प्रकट में उसने उसका धन लेकर सपरिवार बंदीगृह में डालने की आज्ञा दी और कहा कि मैं अभी चंद्रगुप्त से जाकर कहता हूं कि वह इसको प्राणदंड दें।

इतने में नीचे से शोर की आवाज़ सुनाई दी। पता लगा कि सिद्धार्थक शकटदास को सूली पर से उतारकर ले भागा है। चाणक्य ने यह सुनकर भागुनारायण को बुलाया; लेकिन मालूम हुआ कि वह तो पहले ही भाग चुका है। इसपर चाणक्य ने और कुछ लोगों के नाम लिये, लेकिन जिस आदमी को वह बुलाता उसीके बारे में पता लगता कि वह भी भाग चुका है।

यह सुनकर चाणक्य मन में बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि वे सब उसके कहने पर ही भागे थे। लेकिन प्रकट में उसने वैसे काफी क्रोध व्यक्त किया।

: २ :

एक दिन राक्षस बैठा चिंता कर रहा था। तभी कुमार मलयकेतु के सेवक वहां आये और कुछ आभूषण देकर बोले, "कुमार ने ये आभूषण आपके लिए भेजे हैं। आप बहुत दुखी हैं, लेकिन दुख करने से क्या होता है! आपको शृंगार करना चाहिए।" बहुत कहने

पर राक्षस ने उन आभूषणों को स्वीकार कर लिया। इसी समय संपेरे के वेश में उसका एक गुप्तचर वहां आया और उसने बताया कि उन्होंने दारूवर्मा नामक बढ़ई को, यंत्रतोरण गिराकर, चंद्रगुप्त को मारने की जो आज्ञा दी थी, वह विफल हो गई, क्योंकि उस समय चंद्रगुप्त के स्थान पर पर्वतक का भाई वैरोचक बैठा हुआ था। वैरोचक को मरा देखकर उसके सेवकों ने दारूवर्मा को ढेलों से मार डाला। इसी प्रकार वैद्य अभयदत्त को अपनी विष-मिश्रित औषधि स्वयं पीकर मरना पड़ा। चंद्रगुप्त के शयनागार के प्रबंधक प्रमोदक और सुरंग में छिपे हुए बीभत्सक आदि भी इसी प्रकार मारे गए—और यह सब हुआ चाणक्य की जागरूकता और चतुराई के कारण। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि सबके षड्यंत्र पहले ही भांप गई थी।

राक्षस को यह सब सुनकर बड़ा दुख हुआ लेकिन उससे भी अधिक दुख उसे तब हुआ जब दूत ने बताया कि चाणक्य ने क्षपणक जीवसिद्धि को अपमानित करके नगर से निकलवा दिया है और शकटदास को सूली पर चढ़ा दिया है। इसके अतिरिक्त आपका कुटुंब रखने के अपराध में चंदनदास जौहरी को कारागार में डाल दिया है।

अब तो राक्षस रो पड़ा। लेकिन इसी समय सिद्धार्थक शकटदास को लेकर वहां आ पहुंचा। उसे देखकर राक्षस को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उसी समय अपने शरीर से आभूषण उतारकर सिद्धार्थक को पुरस्कार-रूप में दे दिये। सिद्धार्थक ने उन्हें चाणक्य की आज्ञा के अनुसार स्वीकार कर लिया। लेकिन उसने कहा, "अभी आप इन्हें अपने पास ही रखिये और इस मुद्रा से मुद्रित कर दीजिये।" सिद्धार्थक ने जो मुद्रा दी वह राक्षस की अपनी मुद्रा थी। उसे देखकर राक्षस को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन सिद्धार्थक ने बताया कि चंदनदास जौहरी के घर के पास वह उसे पड़ी मिली थी। यह कहकर उसने वह अंगूठी राक्षस को दे दी और स्वयं भी उसके पास रहने की इच्छा प्रकट की; क्योंकि अब वह चाणक्य का शत्रु हो गया था। राक्षस ने उसकी बात स्वीकार कर ली।

: ३ :

कौमुदी-महोत्सव का दिन समीप आने पर चंद्रगुप्त ने यह उत्सव मनाने की घोषणा की थी, लेकिन चाणक्य ने उसे रुकवा दिया। जब चंद्रगुप्त को यह समाचार मिला तो उसने चाणक्य को बुला भेजा और नम्रतापूर्वक उत्सव रोकने का कारण

पूछा। चाणक्य ने कहा, "सब काम हमें ही करने होते हैं सो तुम्हारा यह सवाल पूछना व्यर्थ है।" यह सुनकर राजा को बड़ा क्रोध आया। इसी समय वैतालिकों ने राजा की प्रशंसा में कुछ कवित्त पढ़े। चंद्रगुप्त ने दोनों को एक-एक लाख मुद्रा देने की घोषणा की। लेकिन चाणक्य ने यहां भी उसे ऐसा करने से रोका और कहा, "कुपात्र को इतना क्यों देते हो?" अब तो चंद्रगुप्त बहुत चिढ़ गया। बोला, "मैं मंत्री के हाथ की कठपुतली नहीं बनना चाहता। मैं सम्राट हूं। आज से मैं ही सब काम करूंगा।" चाणक्य ने कहा, "मुझे स्वीकार है।" इसके बाद चंद्रगुप्त ने पूछा, "कौमुदी-महोत्सव के रोकने का क्या प्रयोजन था?" चाणक्य ने तब दासी को भेजकर अचलदत्त कायस्थ को बुला भेजा। उसके पास भद्रभट्ट आदि सेवकों का एक गुप्त पत्र था। उनका उत्कर्ष राजा चंद्रगुप्त के साथ हुआ था; लेकिन वे सब मलयकेतु के साथ मिल गए थे। चाणक्य ने इस विद्रोह का कारण जब चंद्रगुप्त को विस्तार से समझाया तो वह चाणक्य की बुद्धिमत्ता पर मुग्ध हो उठा। चाणक्य ने कहा, "इतना विरोध होने पर कौमुदी-महोत्सव कैसे मनाया जा सकता है?"

चंद्रगुप्त ने पूछा, "मैं एक बात और जानना चाहता हूं। वह यह कि जब मलयकेतु इन सब अनर्थों की जड़ है तो उसे आपने कैसे भाग जाने दिया ?"

चाणक्य बोला, "इसके दो कारण थे। हम या तो उसे पकड़ते या अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसे आधा राज्य देते। यदि हम पकड़ लेते तो परोक्ष में हम यह स्वीकार करते कि पर्वतक को हमींने मारा है। और यदि उसे राज्य देने की बात होती तो पर्वतक का नाश ही क्यों किया जाता ? इसलिए हमने उसे भाग जाने दिया।"

चंद्रगुप्त ने फिर पूछा, "लेकिन आपने राक्षस की उपेक्षा क्यों की ? उसे पकड़ने का उद्योग क्यों नहीं किया ?"

चाणक्य बोला, "राक्षस पर प्रजा का विश्वास है। वह यहां रहता तो कई उपद्रव खड़े हो जाते और यदि मैं उसे बलपूर्वक बंदी बनाता तो वह तुम्हारी बहुत-सी सेना को नष्ट कर देता।"

चंद्रगुप्त को चाणक्य का यह तरीका अच्छा नहीं लगा और वह रुष्ट होकर वहां से चला गया।

उसने राक्षस की प्रशंसा की थी, इसलिए चाणक्य को भी क्रोध आ गया था। लेकिन यह सब

दिखाने के लिए था। वास्तव में तो यह सब-कुछ चाणक्य की इच्छा के अनुसार ही हो रहा था।

: ४ :

एक दिन शकटदास के साथ राक्षस अपने घर में बैठा हुआ था कि कुसुमपुर से एक दूत समाचार लेकर आ पहुंचा। तभी उसको मलयकेतु के आने का समाचार मिला। भागुनारायण उसके साथ था। द्वार पर पहुंचते ही उन्होंने कुसुमपुर का नाम सुना, वे वहीं रुक गए। दूत राक्षस को कौमुदी-महोत्सव के रुकने और चंद्रगुप्त के सब अधिकार अपने-आप संभाल लेने का समाचार सुना रहा था। यह सब सुनकर राक्षस बहुत प्रसन्न हुआ। तब भागुनारायण ने मलयकेतु से कहा, "देखा, चंद्रगुप्त की राक्षस के प्रति कैसी भक्ति है!" इसी बीच में अंदर राक्षस ने दूत से पूछा, "कौमुदी-महोत्सव के बंद होने के अतिरिक्त चाणक्य और चन्द्रगुप्त में कलह होने का और भी कोई कारण है?"

दूत ने बताया, "इसका एक और कारण यह है कि चाणक्य ने भागते हुए मलयकेतु और अमात्य राक्षस की उपेक्षा की है।" अब तो राक्षस और भी प्रसन्न हुआ और उसने शकटदास से कहा, "अब

चंद्रगुप्त मेरे हाथ में आ जायगा । चंदनदास भी छूट जायगा और तुम भी अपने स्त्री-पुत्रों से मिलोगे ।"

उसने यह समाचार कुमार मलयकेतु को देना चाहा । शकटदास के जाने पर कुमार स्वयं वहां आ गया और इधर-उधर की बातों के पश्चात राक्षस ने कुमार से कहा, "अब हमारी विजय होने ही-वाली है, क्योंकि शत्रु संकट में है । चाणक्य चंद्रगुप्त से अलग होगया ।"

इसपर मलयकेतु ने आपत्ति की और कहा, "मेरे विचार से तो यह चंद्रगुप्त के लिए अच्छा ही हुआ । अब प्रजा चंद्रगुप्त को और भी प्रेम करेगी ।"

लेकिन राक्षस ने इस बात को स्वीकार नहीं किया । वह बोला, "और आश्रय न होने के कारण प्रजा चंद्रगुप्त के साथ है । जिस दिन उसे विश्वास हो जायगा कि आप उसके उद्धार के लिए तैयार हैं, तो वह उसको छोड़कर आपसे मिल जायगी ।"

इसपर मलयकेतु आक्रमण का प्रबंध करने के लिए कहकर चला गया और राक्षस ने मुहूर्त्त निकलवाने के लिए ज्योतिषी को बुला भेजा । जो ज्योतिषी वहां आया वह क्षपणक जीवसिद्धि ही था ।

उसने जो मुहूर्त्त निकाला वह उसके प्रतिकूल था। तब राक्षस ने दूसरा ज्योतिषी बुलाने का विचार किया। इसपर क्षपणक नाराज होकर चला गया।

: ५ :

एक दिन सिद्धार्थक चाणक्य का दिया हुआ जाली पत्र, आभूषणों की पेटी और मुद्रा लिये हुए पाटलिपुत्र की ओर जा रहा था कि रास्ते में उसे क्षपणक मिल गया। उसने बताया कि मलयकेतु की सेना में बिना प्रवेश-पत्र के कोई नहीं जा सकता। हां, यदि भागुनारायण का प्रवेश-पत्र हो, तो जा सकते हो। लेकिन सिद्धार्थक बिना प्रवेश-पत्र ही चला गया। क्षपणक को भी जाना था सो प्रवेश-पत्र मांगने के लिए वह भागुनारायण के पास पहुंचा। उसी समय कुमार मलयकेतु भी वहां आ गया। उनके मन में राक्षस के विषय में अनेक शंकाएं पैदा हो रही थीं। क्षपणक को देखकर भागुनारायण समझ गया कि यह राक्षस का मित्र है और उसीके काम से नगर में जाना चाहता है। लेकिन क्षपणक ने बताया कि उसका इन झगड़ों से कोई संबंध नहीं है। इसपर भागुनारायण ने प्रवेश-पत्र देना अस्वीकार कर दिया। अब क्षपणक ने उचित अवसर देखकर कहा, "आप

मुझे गुप्त रहस्य कहने पर विवश कर रहे हैं। मैं पाटलिपुत्र में रहता था। राक्षस से मित्रता हो गई। उस समय उसने गुप्त रूप से विषकन्या का प्रयोग करके राजा पर्वतक को मरवा डाला। यह दुष्ट-कार्य मुझ बदनसीब के द्वारा ही हुआ था।"

यह सुनकर मलयकेतु की आंखें भर आईं। उसे विश्वास हो गया कि उसके पिता को चाणक्य ने नहीं, राक्षस ने मारा था। वह बहुत क्रुद्ध हुआ। लेकिन भागुनारायण ने उसका क्रोध शांत करते हुए कहा, "जबतक हमें राज्य प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक राक्षस को अपने साथ मिलाये रखना चाहिए। यह सब राजनैतिक चाल है। यदि आप बदला लेने की जल्दी करेंगे तो सब काम बिगड़ जायगा।"

मलयकेतु ने उसकी यह बात मान ली।

इसी समय एक सेवक प्रवेश-पत्र न होने के कारण सिद्धार्थक को पकड़कर वहां ले आया। उसके पास वह जाली पत्र था। उसने बताया कि वह राक्षस के काम से जल्दी के कारण बिना प्रवेश-पत्र बाहर जा रहा था।

भागुनारायण ने उस जाली पत्र को देखा। उस पर राक्षस-नाम की मुद्रा अंकित थी। उसमें लिखा था

कि हमारे गुप्तचर को जो पुरस्कार देने को कहा गया है वह दे दिया जाय। बाकी जो बातें हैं वह हमारा पत्र-वाहक आपको अपने मुख से सुनायगा।

भागुनारायण ने वे बातें जानने के लिए सिद्धार्थक को पीटने की आज्ञा दी। पीटते समय आभूषणों की पेटी उसकी बगल में से गिर पड़ी। उसमें जो आभूषण निकले, उन्हें मलयकेतु ने पहचान लिया। वह बोला, "अरे, ये तो वे ही आभूषण हैं, जो मैंने अपने शरीर से उतारकर राक्षस के लिए भेजे थे। अवश्य ही यह पत्र चंद्रगुप्त को लिखा गया है।"

संशय मिटाने के लिए सिद्धार्थक को और पीटा गया, तब उसने चंद्रगुप्त के पास पत्र ले जाने की बात स्वीकार कर ली और बताया कि मंत्री ने यह आदेश किया है, "कुलूतराज चित्रवर्मा, मलयराज सिंहनाद, काश्मीरराज पुष्कराक्ष, सिंधुराज सिंधुसेन और पारसीकराज मेघाक्ष, ये हमारे पांच प्यारे मित्र हैं जो तुम्हें स्नेह करते हैं। पहले तीन राजा मलयकेतु का देश चाहते हैं और बाकी दो हाथी, सेना और धन चाहते हैं। आशा है, जिस प्रकार चाणक्य का तिरस्कार करके आपने मेरे प्रति प्रेम प्रकट किया, उसी प्रकार उनका भी काम करेंगे।"

यह समाचार सुनकर मलयकेतु अवाक रह गया। उसने राक्षस को बुला भेजा। जब राक्षस कुमार से मिलने के लिए चला तो उसने शकटदास से कुमार के दिये हुए आभूषणों में से एक पहनने के लिए मांगा।

मिलने पर कुमार ने पूछा कि अब चलने में कितनी देर है? राक्षस ने जो प्रबंध किया था उसकी सूचना दी और बताया कि पांच-छः दिन में हम लोग वहां पहुंच जायंगे। इसपर कुमार ने सिद्धार्थक को बुला भेजा और पूछा कि आपने पत्र देकर इस आदमी को किस काम से भेजा था?

सिद्धार्थक ने आंखों में आंसू भर लज्जा दिखाते हुए कहा, "मंत्रीजी, पीटे जाने पर सब बातें मैंने इनसे कह दी हैं।"

राक्षस को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उसे पत्र दिखाया गया तो उसने कहा, "कुमार, यह सब शत्रु की चाल है।" इसपर मलयकेतु बोला, "लेकिन ये आभूषण भी तो आपने भेजे हैं।" आभूषण देखकर राक्षस ने कहा, "ये तो वे ही आभूषण हैं जो आपने मुझे दिये थे और किसी प्रसन्नता के कारण मैंने फिर इनको सिद्धार्थक को दे दिया था।"

आगे चलने पर यह भी पता चला कि वह पत्र

शकटदास के हाथ का लिखा हुआ है। राक्षस की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या है। इतने में कुमार की दृष्टि उस आभूषण पर पड़ी, जो राक्षस ने पहन रखा था। उसने पूछा, "यह आपके पास कहां से आया ?"

राक्षस ने बताया कि उसे उसने एक जौहरी से खरीदा था। लेकिन यह आभूषण पर्वतेश्वर का था। मलयकेतु की दासी ने उसे पहचान लिया। राक्षस को यह सब देखकर विश्वास हो गया कि यह सब षड्यंत्र चाणक्य का ही है, पर प्रकट में उसने यही कहा, "यह सब भाग्य का खेल है।"

लेकिन मलयकेतु ने उसकी किसी बात का विश्वास नहीं किया और वह उसपर अपने पिता की हत्या करने और उसके साथ कृतघ्नता करने का दोष लगाने लगा। उसने कहा, "यह सब तुम्हारी चाल है। तुम शत्रु के साथ मिलकर मुझे मारना चाहते हो।"

और उसने क्रोध में भरकर भासुरक को आज्ञा दी, "जो तीन राजा हमारी भूमि की कामना करते हैं उन्हें धरती खोदकर गड़वा दो। जो हस्ती-सेना चाहते हैं उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा दो।"

फिर राक्षस से प्रकट रूप से चंद्रगुप्त का आश्रय

लेने के लिए कहकर मलयकेतु वहां से चला गया। राक्षस चिंतित होकर सोचने लगा कि हाय, अबतक जो कुछ मैंने किया, उससे शत्रु के नाश के स्थान पर मित्रों का ही नाश हुआ। मैं बड़ा अभागा हूं। मुझे तपोवन चला जाना चाहिए। लेकिन यदि चंदनदास को नहीं छुड़ाता तो भी मैं कृतघ्न रहूंगा।

यही सोचता हुआ वह भी वहां से चला गया।

: ६ :

फिर मलयकेतु की आज्ञा से चित्रवर्मा आदि पांचों राजा मार डाले गए। जो बचे, वे डरकर अपने-अपने देश को लौट गए। इसके बाद चाणक्य के संकेत पर भद्रभट्ट आदि ने मिलकर मलयकेतु को बंदी बना लिया। तब चाणक्य ने एक बड़ी सेना लेकर मलयकेतु के पक्ष की बची-खुची म्लेच्छ सेना को नष्ट कर डाला।

यह स्पष्ट ही राक्षस की पराजय की सूचना थी। वह अब किसीको मुंह दिखाने योग्य नहीं रह गया था। वह बहुत ही दुखी था। इस प्रलयकांड के समय वह पाटलिपुत्र चला आया था और नगर के बाहर एक पुराने बागीचे में बैठा हुआ अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहा रहा था। उसी समय एक व्यक्ति हाथ में फांसी लिये

हुए वहां आया। वह कह रहा था कि मित्र के दुख से छुटकारा पाने का अब यही एक उपाय शेष रह गया है।

इन शब्दों को सुनकर राक्षस तुरंत बाहर निकल आया। बोला, "यह क्या करते हो?" उसके बहुत आग्रह करने पर फांसी लानेवाले व्यक्ति ने बताया कि चंदनदास का एक मित्र विष्णुदास अपने मित्र के दुख से दुखित होकर अग्नि में प्रवेश करने जा रहा है। चंदनदास को सूली पर चढ़ाया जा रहा है, क्योंकि वह राक्षस के परिवार को अपने यहां से नहीं निकालता। विष्णुदास मेरा मित्र है। मैं अपने मित्र का अमंगल नहीं देख सकता। इसलिए उसके अग्नि-प्रवेश से पहले मैं मर जाना चाहता हूं।

उस व्यक्ति का अपने मित्र के लिए यह त्याग देखकर राक्षस द्रवित हो उठा। उसने कहा, "मित्र, डरो नहीं। चंदनदास की रक्षा मैं करूंगा।" यह कहकर उसने अपनी तलवार उठा ली और वध-स्थान की ओर चल पड़ा। उस व्यक्ति ने कहा, "जबसे शकटदास वध-स्थल से भागा है तबसे वहां कोई भी व्यक्ति तलवार लेकर नहीं जा सकता। यदि आप ऐसा करेंगे तो चंदनदास का वध और भी जल्दी कर दिया

जायगा।" राक्षस असमंजस में पड़ गया, लेकिन फिर मित्र-प्रेम के कारण निहत्था ही वध-स्थान की ओर चल पड़ा।

: ७ :

आखिर चांडाल लोग चंदनदास को सूली पर चढ़ाने के लिए वध-स्थान की ओर ले चले। उसके मित्र, स्त्री तथा पुत्र उसके साथ-साथ रोते-कलपते जा रहे थे। जब वे वध-स्थान के पास पहुंचे तो चांडालों ने उसकी स्त्री से कहा, "तुम वापस लौट जाओ। तुम्हें इससे आगे जाने की आज्ञा नहीं है।" स्त्री रोने लगी। चंदनदास ने उसे शांत करते हुए कहा, "बच्चे को घर ले जाओ और यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करो।" लेकिन स्त्री किसी प्रकार भी शांत नहीं हुई। वह बराबर रोती रही। इतने में उन्होंने क्या देखा कि राक्षस झटपता हुआ वहां आ गया है और पुकार-कर कह रहा है, "चंदनदास, निश्चिंत रहो। मैं आ गया हूं।" राक्षस का चिर-परिचित कंठ-स्वर पहचानकर चंदनदास हैरान रह गया। वह बोल उठा, "मित्र, तुमने ऐसा दुस्साहस करके मेरे सारे किये-कराये पर पानी फेर दिया।"

कुछ देर बाद चांडालों से सूचना पाकर चाणक्य

भी वहां आ पहुंचा। उसने राक्षस को प्रणाम किया और पैर छूने को झुका। राक्षस बोला, "मैं चांडालों के छूने से अपवित्र हो गया हूं। इसलिए आप मुझे न छूएं।" चाणक्य ने कहा, "यहां चांडाल कौन हैं ?" इनमें एक तो आपका परिचित सिद्धार्थक नामक राजपुरुष है। दूसरा भी राजपुरुष है। उसका नाम समिद्धार्थक है। इन्हींके द्वारा धोके से मैंने शकटदास से जाली-पत्र लिखवाया था और यह सब इसीलिए किया था कि आपका महाराज चंद्रगुप्त से मेल हो जाय।

इस प्रकार चाणक्य ने उस समय राक्षस के सामने अपने सारे रहस्य खोलकर रख दिये।

इसी समय महाराज चंद्रगुप्त अपने सेवकों-सहित वहां आ गए और चाणक्य के आदेश से उन्होंने राक्षस को प्रणाम किया। फिर चाणक्य ने राक्षस से कहा, "यदि आप चंदनदास की रक्षा करना चाहते हैं तो तलवार ग्रहण कीजिये।

यह सुनकर राक्षस बोला, जबतक तुम शस्त्र ग्रहण किये हुए हो तबतक हम कैसे ग्रहण कर सकते हैं ?"

चाणक्य ने कहा, "यह आप क्या कहते हैं ? हम

योग्य और आप अयोग्य, इन बातों में क्या रखा है ? आपके शस्त्र-ग्रहण किये बिना चंदनदास नहीं बच सकता।" अब तो राक्षस विवश हो गया। उसने कहा, "ऐसी बात है तो मंगाओ तलवार।" तब हर्षित होकर चाणक्य ने तलवार मंगवाई और राक्षस ने उसे ग्रहण कर लिया।

राक्षस को तलवार लिये देखकर चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बधाई देते हुए कहा, "अब तुम्हारा राज्य अचल हो गया है। राक्षस तुम्हारे महामंत्री हुए।"

इतने में सैनिक लोग मलयकेतु को बांधकर वहां ले आये और पूछने लगे कि इसके लिए क्या आज्ञा है ? चाणक्य ने कहा, "अजी, अब मैं आज्ञा देनेवाला कौन हूं। नये मंत्री से पूछो,"

राक्षस बोला, "महाराज चंद्रगुप्त, कुमार से हमारा कुछ दिन संबंध रहा है, इसलिए इसको प्राणदंड न दिया जाय।"

यह सुनकर चंद्रगुप्त चाणक्य की ओर देखने लगे। उसने कहा, "राजन, अमात्य राक्षस की पहली आज्ञा तो माननी ही चाहिए। सैनिक जाओ, भद्र भट्ट से कह दो कि महाराज चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं। तुम इसे गद्दी पर बैठा आओ।"

Mahatma Gandhi Memorial Library

5, Kumara Park (East), Bangalore-1

BOOK CARD

152W3N57

CL No. 015,2 VIS Acc. No. H.000504

Author VISHAKADATTA ( ) ( ).

Title Mudrarakshsa.

Ticket No.	Issue Date	Return Date	Ticket No.	Issue Date	Return Date

'संस्कृत साहित्य सौरभ' की पुस्तकें

१. कादंबरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुंतला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६ मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावणवध
२८. सौंदरनंद

मूल्य प्रत्येक का छः आना

६

सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना